जैन - दर्शन में कर्मवाद की अस्मिता

(साध्वीश्री अनेकान्तलताश्रीजी)

भारतीय – दर्शन में कर्म और उसके फल के सम्बन्ध में गंभीरता से विचार किया गया है। कर्म–सिद्धान्त की भारतीयदर्शन में एक अनूठी विशेषता है। कर्म क्या है? और इसका फल कैसे मिलता है? तथा किस कर्म का क्या फल मिलता है? इस विषय पर भारतीय दर्शन और भारत के तत्वदर्शी चिंतको ने जो विचार किया हैं उतना और वैसा पाश्चात्य दर्शन में नहीं किया गया है। भारतीय दर्शन में भी जैनदर्शन ने कर्म के स्वरूप में जो गहन एवं विशाल चिन्तन प्रस्तुत किया है वह एक अनोखा ही हैं।

कर्म – "क्रियते धार्यते वा कर्मणा तत् कर्म" यह शब्द व्यापार क्रिया उद्यम या पुरुषार्थ अर्थ में प्रयोग में लिया जाता है। गीता का "कर्मयोग" भी उद्यम प्रवृत्ति के अर्थ का ही सूचक हैं। लेकिन यहाँ "कर्म" का अर्थ अलग ही है जो कर्मविज्ञान पर सुव्यवस्थित रूप से हैं।

संसार में शब्द मात्र सापेक्ष भाव से ही है, आप एक शब्द का उच्चारण करो कि दूसरा विरोधी शब्द उसके सामने ही खड़ा है। आपने सुख शब्द का उच्चारण किया तो आपके सामने दुःख शब्द है ही अतः विश्व में सुख-दुःख, शुभ-अशुभ, सदाचार-दुराचार, दोनों प्रकार के भावों का शाश्वत अस्तित्व रहा हुआ है, धार्मिक परिभाषा में हम उसे पुण्य-पाप से पहचानते हैं।

अतः विविध धर्म के स्थापकों को लगा कि इस विचित्रता के पीछे अवश्य कोई कारण तो होना ही चाहिए। कारण के बिना कार्य कैसे हो सकता है? अतः कर्म शब्द के लिए विभिन्न दर्शनकारों ने भिन्न-भिन्न शब्द का प्रयोग किया बौद्धशास्त्रकारों ने इसके संस्कार, वासना, अविज्ञप्ति शब्द पसंद किये हैं। सांख्यशास्त्रों ने प्रकृति शब्द स्वीकार किया है। वेदान्तियों ने माया, अविद्या शब्द का प्रयोग किया है। वैशेषिकों ने अदृष्ट शब्द का और मीमांसकों ने अपूर्व शब्द का प्रयोग किया है। तथा जैन-शास्त्रकारों ने एक विशेष अर्थ ही इसके लिए प्रकाशित किया है।

अच्छे या बुरे भावों का जन्मदाता भोक्ता या मोक्ता जीव ही है। तब निर्विवाद प्रश्न उठता है कि जीवमात्र अच्छे काम ही क्यों न करे, जिससे उसे दुःखी होने का अवसर ही नहीं मिले लेकिन चेतना सदैव शुभमार्ग में प्रवृत्त नहीं हो सकती है। तब प्रश्न उठता है कि ऐसा होने का कारण क्या हैं?

तब अनंत करुणा के निधान समता के सागर श्री महावीर भगवान् ने अपने देदीप्यमान केवलज्ञान रूपी ज्योति में जो देखा है:– वह इस

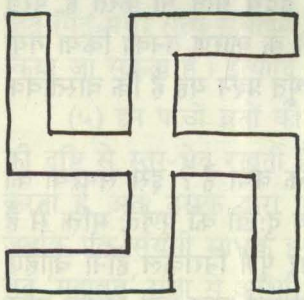

प्रकार है "वे कहते हैं कि कोई अदृष्ट सत्ता आत्मा को खींच रही होती है इससे निश्चित होता है कि विश्व में दो ही सत्ता का अस्तित्व है। मोक्ष में न जाय तब तक सनातन है आत्मसत्ता, जीवसत्ता या चैतन्यसत्ता और दूसरी है कर्मसत्ता। इन दोनों के परस्पर मिलन से संसार में संघर्ष झगड़े आदि उत्पन्न होते हैं और उसके परिणाम से कर्म जिस प्रकार जीव को नचाता है उसी प्रकार नाचना पड़ता है।

तब मानव मस्तिष्क में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि कर्म वस्तु क्या है? विश्व के किसी भी किसी धुरंधर तत्वज्ञानी ग्रन्थ में, जैनधर्म ने कर्म की जो व्याख्या की है उसका अंश मात्र भी नहीं है। स्थूल व्याख्या तो जरूर हो सकती है, लेकिन सूक्ष्म से सूक्ष्मतर व्याख्या नहीं हो सकती है। यह व्याख्या तो सर्वज्ञ भगवंत द्वारा कथित जैन शास्त्रों के द्वारा ही जानी जा सकती है। यह विज्ञान त्रिकालज्ञानी तीर्थंकर भगवंत ने अपने साक्षात् ज्ञान में देखकर ही बताया है। तब प्रश्न उठता है कि इसका प्रमाण क्या है?

तब तत्त्वज्ञानियों ने बताया कि कर्मशास्त्र के लिए जो शब्द प्रयुक्त है वह शब्द विश्व में कोई जगह कोई स्थान में सुनने में या देखने में नहीं आ सकता है। इन शब्दों की अभिनवता और अप्रतिद्वन्द्विता सर्वज्ञ द्वारा कथित सच्चाई को पूर्ण करने के लिए निष्पक्ष और तटस्थ विद्वानों के लिए प्रमाण–पत्र रूप हैं।

कर्म की परिभाषा :– कर्म की परिभाषा करते हुए कहा गया है कि आत्म संबद्ध पुद्गल द्रव्य कर्म कहा जाता है और द्रव्य कर्म के बन्ध हेतु रागादि भाव, भाव कर्म माना गया है। आचार्य देवेन्द्रसूरि ने अपने स्वरचित ग्रंथ में कर्म का स्वरूप बताते हुए कहा है कि —

"कीरह जीएण हेउहिं जेणं त्तो भण्णए कम्मं"

कर्म का यह लक्षण द्रव्य और भाव दोनों में घटित होता है। मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग इन पांचों के द्वारा आत्म प्रदेशों में परिस्पंदन होता है, जिससे उसी आकाश प्रदेश में स्थित अनन्तानन्त कर्म योग्य पुद्गल जीव के साथ सम्बद्ध हो जाता है, वह आत्म-संबद्ध पुद्गल कर्म कहा जाता है। ये कर्म पुद्गल चौदह राजलोक में पूर्ण रूप से भरे हुए हैं। महावीर परमात्मा ने अपने ज्ञानद्वारा प्रत्यक्ष

Jain Education International
For Private & Personal Use Only
www.jainelibrary.org

कर्म के अनंत प्रदेशी द्रव्यों को देखा है और कहा कि, 'कर्म रूप परिणाम प्राप्त करने वाले पुद्गल स्कंध विश्व में सर्व जगह व्याप्त हैं।

कर्म के भेद: श्री देवेन्द्रसूरि म. ने अपने स्वरचित कर्म विपाक नाम के ग्रंथ में कर्म के मुख्य आठ प्रकार और उत्तर भेद १५८ बताये हैं:—

मूलपगइट्ठ उत्तर पगइ, अडवन्नसयमे अं
"इअ नाणदंसणावरण, वेउमोहाउनामगोआणि" ॥

इसमें मूल भेद (१) ज्ञानावरणीय (२) दर्शनावरणीय (३) वेदनीय (४) मोहनीय (५) नामकर्म (६) आयुष्यकर्म (७) गोत्रकर्म और (८) अंतराय कर्म ये मूल आठ प्रकार हैं। और इसके उत्तर भेद विभिन्न प्रकार के हैं, इनके द्वारा आत्मा शुभाशुभ निमित्त मिलने पर कर्म का बंध करती है।

मूर्त का अमूर्त पर प्रभाव :— यदि कर्म मूर्त हैं जड़ हैं तो फिर वह अमूर्त ऐसी चेतनावन्त आत्मा पर अपना प्रभाव कैसे डाल सकते हैं? इसका उत्तर इतना ही है कि जिन ज्ञानादि गुणों से युक्त आत्मा पर मदिरा आदि का प्रभाव पड़ता है वैसे ही अमूर्त जीव पर मूर्त का प्रभाव पड़ता है। दूसरा समाधान यह भी है कि कर्म के संबंध के कारण आत्मा कथंचित् मूर्त भी है क्योंकि कर्म का आत्मा के साथ अनादिकाल से सम्बन्ध है इस अपेक्षा से आत्मा सर्वथा अमूर्त नहीं है, अपितु कर्म संबंध होने के कारण अमूर्त होते हुए भी मूर्त है। इस दृष्टि से अमूर्त आत्मा पर मूर्त कर्म का उपघात, अनुग्रह, प्रभाव पड़ता है।

जीव का कर्म के साथ संबंध : जीव का कर्म के साथ मिथ्यात्व अविरति और हेतुओं के द्वारा एकमेक होना जिस प्रकार कि जल और दूध परस्पर एकमेक हो जाते हैं। वैसे ही कर्म प्रदेश वे, परमाणु आत्म प्रदेश के परमाणु आत्म प्रदेशों के साथ संश्लिष्ट हो जाते हैं अथवा अग्निलौहपिण्डवत् जिस प्रकार लौह पिंड को अग्नि में डाल देने से उसके कण-कण में अग्नि परिव्याप्त हो जाती है उसी प्रकार आत्मा के असंख्यात प्रदेशों पर अनन्त-अनन्त कर्मवर्गणा के कर्मदलितों का संबंध हो जाता है। जब जब अमूर्त ऐसी आत्मा शुभाशुभ विचार करती हैं तब तब मूर्त ऐसे कर्म कार्मण वर्गणा के पुद्गलों को खेंचकर अपने आत्मप्रदेशों के साथ जोड़ती है जिस प्रकार दीपक वर्तिका द्वारा तैल ग्रहण करता है उसी प्रकार, और इस प्रकार के संपर्क शुभाशुभ विचार चलते हैं और पहले एकत्रित कार्मण पुद्गल के स्कंधों को कर्म शब्द से पहचाने जाते हैं। इस प्रकार आत्मा कर्म को जिस प्रकार बांधती है उसी प्रकार का कर्म का स्वभाव वह कितने वर्ष तक आत्मा के साथ रहेगा? किस प्रकार उसे भुगतना पड़ेगा, इसका प्रमाण कितना, आदि निश्चित हो जाते हैं।

पुद्गल एक परमाणु रूप होता है और अनेक परमाणु रूप भी होता है और एक दूसरे के संपर्क से स्कंध के रूप में पहचाने जाते हैं, आत्मा पुद्गल रूप स्कंधों को ग्रहण नहीं करती है, लेकिन स्कंध तप से रहे हुए पुद्गल स्कंधों को ग्रहण करती है। ये स्कंध सर्व जगह व्याप्त हैं।

जीव के साथ कर्मों का बंध शास्त्रों में अनेक प्रकार से बताया हैं। (१) स्पष्ट (२) बंध (३) निघत (४) निकाचित।

स्पष्ट बंध – यह कर्म तो कोई अन्य निमित्त मिलने पर भोगे बिना ही छूट जाता है।

बंध बंध – यह कर्म थोड़ा फल देकर छूटा पड़ जाता है।

निघत बंध –यह कर्म अधिक फल देकर छूटा पड़ जाता है।

निकाचित बंध– लेकिन यह कर्म तो ऐसा है कि उसे किसी भी प्रकार भुगतना ही पड़ता है भोगे बिना नहीं छूटता है। आत्मा जिस परिणाम में कर्म का बंध करती है, उसी प्रकार उसे भुगतना पड़ता है, जैसे कि—

कर्मणोहि प्रधानत्वं किं कुर्वन्ति शुभाग्रहाः।
वशिष्ठदत्तलग्नेऽपि, रामः प्रव्रजितो वने ॥

यह सब बताने पर भी मुख्य लक्ष्य यही है कि आत्मा जैसे कर्मों को करता है उसी प्रकार के शुभाशुभ कर्मों के शुभाशुभ फल उसे मिलते हैं जिस प्रकार जैसे गुरु ने राम को राज्याभिषेक का लग्न दिया, लेकिन कर्म प्रधानता से सभी निष्फल है और उसी समय उन्हें वन में जाना पड़ा। महावीर परमात्मा जैसे महान पुरुषों को भी कर्म ने नहीं छोड़ा।

कर्म से मुक्ति और मोक्ष की प्राप्तिः– भारतीय दर्शन में जिस प्रकार कर्मबंध के कारण माने गये हैं उसी प्रकार मोक्ष के उपाय भी माने गये हैं। बंधन से विपरीत दशा को मोक्ष एवं मुक्ति कहा जाता हैं, जीव का कर्म के साथ प्रतिक्षण संबंध होता हैं। पुरातन कर्म अपना फल देकर आत्मा से अलग पड़ते और नये कर्म प्रतिसमय बंधाते हैं, लेकिन इसका परिणाम यह नहीं हैं कि आत्मा कभी कर्मों से मुक्त बने ही नहीं जैसे स्वर्ण और मिट्टी परस्पर मिलकर एक हो जाते है, किन्तु ताप आदि प्रक्रिया के द्वारा जिस प्रकार मिट्टी को अलग करके शुद्ध स्वर्ण को अलग कर लिया जाता है उसी प्रकार आत्मा अध्यात्म साधना से कर्म विमुक्त हो जाती है। फिर कभी कर्मबंध नहीं होता है, क्योंकि कर्मबंध के साधनों का सर्वथा अभाव हो जाता है जैसे बीज के सर्वथा जल जाने पर अंकुर की उत्पत्ति नहीं होती है उसी प्रकार कर्म रूपी बीज जल जाने से संसार रूपी अंकुर उत्पन्न नहीं होता है। इससे यह सिद्ध होता है कि आत्मा एक दिन कर्म से बद्ध हुआ है, वह आत्मा एक दिन कर्मों से मुक्त हो सकती है। कर्म मल से विमुक्त आत्मा ही जैन दर्शन के अनुसार अन्त में परमात्मा हो जाती है।

मधुकर मौक्तिक

भाव की शक्ति जब प्रगाढ़ हो जाती है, तब भव की शृंखला शिथिल हो जाती है। प्रगूढ़ भावों के अन्तःस्तल को स्पर्श करने के लिए पूर्व में कहा गया है कि—प्रार्थना, जिसके आगे भवशक्ति का ह्रास हो जाता है, परम सहायक बन सकती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org